राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 66 | अप्रैल-जून 2018 | अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन	01
2.	दुःख का कारण *लालाजी महाराज*	02
3.	भजन सुमिरन का तरीका *डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	07
4.	उपदेश *अनमोल वचन*	10
5.	प्रेम से ही परमात्मा की अनुभूति होती है *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	14
6.	जुन्नुन मिश्री	18
7.	मालिक की मौज में मस्त मेरे मौला ने दिया दुर्लभ संदेश	29
8.	सच्ची सम्पदा	31
9.	योग क्या है	32
10.	ईश्वर का नाम	40

राम ॐ संदेश

संस्थापक
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी
सम्पादक
डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना
(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 66 अप्रैल-जून 2018 अंक-2

भजन

प्रभु जी तुम औगन बकसन हार।
हऊं बहु नीच उधारौ पातकी, मूरिष निपट गंवार।।
मो सम पतित अधम नहीं कोउ, षीन दुषी विसयार।
नाम सुनहि नरकु भजै ह्वै, तुम्ह बिन कवन हमार।।
पतित पावन विड़द तिहारौ, आई परौं तोहि दुवार।
कहि रविदास इहु मन आसा, निज कर लेहू उबार।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

दुःख का कारण

मेरे प्यारों,

दुःख के कारण भ्रम और शंकाऐं हैं। इनके द्वारा ही हम अपने लिए नये–नये दुःख पैदा कर लेते हैं। बिना सोचे समझे अंधाधुंध किसी काम को करते रहने से कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है। यह भी सम्भव है कि ऐसा करने पर भी सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक पुरुष अपने ध्येय को प्राप्त कर सका हो, परन्तु अधिकतर यही देखा गया है कि जब तक समझ–बूझ के साथ ढंग से काम नहीं किया जायेगा, उस कार्य के सभी अंगों को ठीक तौर पर नहीं चलाया जाएगा तब तक सफलता मिलना असम्भव है।

जैसे दवा के साथ पथ्य होता है, उसी प्रकार प्रत्येक काम के सम्बन्ध में कुछ न कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिन्हें मुख्य कार्य के समान ही निभाना भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

संसार में अधिकतर मनुष्य ऐसे होते हैं कि जो परमार्थ और परमार्थ के असली रूप को नहीं समझते और न कभी वे उसको समझने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए वे उसके पूर्ण लाभ से वंचित रह जाते हैं। परमार्थ तक पहुँचने के लिए एक रास्ता है जिस पर चल कर हम वहाँ पहुँच सकते हैं। परन्तु इस मार्ग पर चलने वाले मुसाफिर ऐसी आशाओं को लेकर उधर रवाना होते हैं कि जिनके कारण वे उत्तराखण्ड न पहुंचकर दक्षिण दिशा में जा पहुंचते हैं और कभी–कभी भयानक झंझटों में अपने आपको फंसाकर वहीं नष्ट होकर रह जाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस ओर चलने वाले पथिक में आगे चलकर कई प्रकार की ऐसी स्थितियाँ, सिद्धियाँ और शक्तियाँ आने

लग जाती हैं कि जिनका बाहरी रूप ऐसा दिखाई देता है कि ये हमारे शारीरिक लाभ अथवा सांसारिक पदार्थों के लाभ के लिए आई हैं, परन्तु यदि हम इनकी ओर ध्यान न दें और आगे बढ़ते चले जायें तो ये आत्मसाक्षात्कार में हमारी सहायक बन जाती हैं और उनके द्वारा ही हम अनन्त सुख प्राप्त कर सुखी बनते हैं।

परन्तु अपनी ग़लती से उनको ही हम ध्येय समझकर यदि अपना झुकाव उधर को ही कर देते हैं तो ये योग शक्तियाँ हमारा मुँह नीचे की ओर मोड़ देती हैं और हमारा पतन करती हुई थोड़े ही दिनों में वहाँ लाकर पटक देती हैं कि जहाँ पर फिर न उन शक्तियों का पता चलता है और न उस मार्ग का और हम पूरे संसारी मनुष्य बनकर रह जाते हैं जिसके लिए हमें कभी-कभी पछताना भी पड़ता है। ''यथा मति तथा गति।''

इस मार्ग पर चलने वालों ने क्या कभी यह विचार किया है कि हम कौन-कौन सी सांसारिक आशाओं की गठरी लादे हुए आज इध ार को चल रहे हैं। हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर पहुँचना चाहते हैं परन्तु हमारे सिर पर इतना बोझ लदा हुआ है जिसके कारण हम थकित हुए जा रहे हैं। हमारे पाँव लड़खड़ा रहे हैं। हमारी शक्ति जवाब दे रही है। ऐसी दशा में क्या यह संभव नहीं है कि हमारे पाँव फिसल जायें और हम औंधे मुँह किसी खड्डे में गिर कर अपनी हड्डी पसली तोड़ लें। ऐसा होने पर हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो सकता है।

हमें चाहिए कि इस उर्ध्व गति के समय बहुत सावधान रहें। गठरी को सिर से दूर फेंक दें और हलके बनकर जल्दी-जल्दी कदम उठाते हुए उस स्थान पर पहुँच जायें जहाँ से न लौटना होता है और न ही किसी प्रकार का दुःख है।

आओ देखें, रास्ता क्या है। हमारा इष्ट (ध्येय) क्या है। इस ध्येय को पाने का साधन क्या है। ध्येय और साधन में भेद क्या है।

देखना यह है कि हम इस ओर साधन को ध्येय मानकर चल रहे हैं या ध्येय को ध्येय समझकर।

जिस मार्ग पर तुम को चलना है, वह निष्कामता का मार्ग है। यदि तुम अपने मन में किसी लालसा को लिए हुए यहाँ आये हो या किसी प्रकार की अन्य इच्छा (इस लोक की अथवा परलोक की) तुम्हारे हृदय में उठ रही है तो तुम को समझना चाहिए कि हम अपने मार्ग से च्युत हो रहे हैं। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए साधन और सत्संग करता है, वह वास्तव में जिज्ञासु नहीं है। वह ईश्वर को नहीं चाहता और न उसके लिए यहाँ आता है।

हमारा जो मार्ग है, उसमें किसी मनुष्य को यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि उसमें ऐसी सिद्धियाँ और शक्तियाँ आ जायेंगी कि जिनके द्वारा वह भूत भविष्य का ज्ञाता हो जायेगा अथवा और कोई अद्‌भुत चमत्कार दिखाने लग जायेगा कि जिसके कारण वह समाज में प्रतिष्ठित समझा जाने लगे और सर्व साधारण उसकी महिमा गाने लगें।

हम किसी से यह वादा नहीं करते कि उसके पाप क्षमा करा दिये जायेंगे तथा अशुभ कर्मों के करने पर भी वह यम–दण्ड से बचा दिया जाएगा। तुम लोगों को ये आशा छोड़ देनी चाहिए।

हम यह भी वायदा नहीं करते कि आज से तुम्हारे सारे कार्य ठीक होंगे और तुम क्लेशों से बचा दिये जाओगे। ये तो सब भोग हैं। चाहे भजन करो या न करो, तुम्हें भोगने ही होंगे। गंडा, तावीज, झाड़फूंक, दुआ इत्यादि के द्वारा लोगों को सांसारिक लाभ हमारे यहाँ नहीं पहुंचाये जाते। कोई व्यक्ति अपना मुकदमा जीतने की गरज़ से, परीक्षा में पास होने के लिए, रोजगार और नौकरी के लिए तथा रोगों से निरोग होने के लिए, सन्तान की प्राप्ति के लिए अथवा किसी दूसरे कष्ट को दूर करने के लिए यहाँ आया है तो वह अधिकारी नहीं है। ईश्वर प्राप्ति के लिए ये सारे विचार त्याग देने चाहिए और कभी आशा नहीं रखनी चाहिए कि हम उनकी आगे पीछे की बात

बता देंगे। यदि तुम्हें इन बातों की चाहना है तो इसके लिए संसार में कमी नहीं है। ऐसे लोगों के पास तुम जा सकते हो।

कई लोग यह चाहते हैं कि उन्हें कुछ भी परिश्रम न करना पड़े। गुरु अपनी शक्ति से ही हमें ऊँचे स्थानों पर पहुँचा दे और ऐसी स्थिति कर दे कि उनमें सत्कर्म स्वाभाविक रूप से आ जायें। न कभी पाप कर्म की ओर उनका चित्त जाये और न कभी विचार उनके अन्दर उठें। अथवा उनकी बुद्धि इतनी तीव्र हो जाये कि धर्म के रहस्य को समझने के लिए उन्हें तनिक भी दिमाग न लगाना पड़े। ये सब थोथी बातें हैं। भाग्य से अथवा ईश्वर की दया से कोई जिज्ञासु एकदम चाहे इस अवस्था में पहुँच गया हो परन्तु हर एक के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

प्रत्येक साधक की आन्तरिक अवस्था में भेद होता है। कोई शीघ्र ही उन्नति कर जाता है और कोई देर से। कोई बैठते-बैठते ही आनन्द में डूब कर अपनी सुधबुध बिसार देता है और किसी को वर्षों बीत जाते हैं परन्तु वह वैसा ही दिखाई पड़ता है। एक कदम भी आगे नहीं चल पाता। ये सब बातें अपनी पात्रता और संस्कारों पर निर्भर हैं।

कई लोगों को साधन के समय अद्‌भुत-अद्‌भुत प्रकाश दृष्टिगोचर होते हैं। कई प्रकार के नये-नये शब्द अन्तर में सुनाई देते हैं। कई साधकों को कुछ भी अनुभव नहीं होता। वह आँख मूँदे एकदम आगे बढ़ता चला जाता है। किसी को स्वप्न में या ध्यान में नयी-नयी विचित्र बातें अनुभव होती हैं और किसी को कुछ भी नहीं। यह सब बीच की बातें हैं। इन की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने लक्ष्य पर पहुँचने का उद्योग करना चाहिए।

लक्ष्य या आदर्श क्या है, सुनो! निष्कामता के साथ कर्तव्य समझ कर उसकी आज्ञा का पालन करना और उसकी इच्छा में प्रसन्न रहना यही धर्म है।

धर्म के अर्थ केवल कर्तव्य के हैं। धर्मशास्त्र में इसको दो भागों में बाँटा है। एक मानसिक धर्म और दूसरा सामाजिक धर्म। मानसिक धर्म के भी दो भाग हैं। एक यह कि जिसका सम्बन्ध बाहरी कर्मों से है, जैसे सन्ध्या, प्रार्थना, जप–तप, कीर्तन, व्रत, यज्ञ, बलिवैश्य देव, तीर्थ, दान इत्यादि। इनमें मन इन्द्रियों के साथ काम करता है इसलिए ये बाहरी कर्म कहलाते हैं।

दूसरे आन्तरिक धर्म वे हैं, जिनमें केवल मन ही अपना काम करता है जैसे प्रेम के साथ निरन्तर उसकी याद करना, उस पर दृढ़ विश्वास होना, उससे डरना, संसारी पदार्थों से लगाव कम करना, वैराग्य होना, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहना, ममत्व और तृष्णा का कम करना, भजन के समय मन को उसकी ओर से न हटने देना, सत्कर्मों की ओर रुचि होना, दूसरों को नीच और बुरा न समझना, दीन–दुखियों पर दया करना, क्रोध न करना, अपनी किसी वस्तु के लिए अभिमान न करना इत्यादि। इन सब पर चलना ही पंथ या मार्ग कहलाता है।

जिस प्रकार बाहरी कर्म किये जाते हैं, उसी प्रकार भीतरी कर्मों के करने की भी आज्ञा है। जब तक मन का व्यवहार ठीक नहीं तब तक बाहरी कर्म ठीक नहीं हो सकते, जैसे ईश्वर के लिए तुम्हारे मन में पूर्ण श्रद्धा नहीं है, उसका मूल्य तुम नहीं जानते तो सन्ध्या में सुस्ती हो जायेगी या उल्टी–सीधी जल्दी–जल्दी कर ली जायेगी और उपासना करने के लिए मन तैयार नहीं होगा।

बाहरी कर्मों के करने में मनुष्य चाहे जितनी होशियारी करे, जब तक मन नहीं संभलेगा, तब तक वह अधिक नहीं चल सकती। इसका गढ़ना और उच्च भाव का बनना आवश्यक है।

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

भजन सुमिरन का तरीका

मन में तरेंगे उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिए। सुरत को तीसरे तिल में समेटें। दोनों आँखों की रौशनी जहाँ मिलती है, वही ध्यान करना चाहिए। वहां ध्यान जमाने से प्रकाश नजर आएगा। शब्द भी वहीं सुनाई देगा परन्तु उसे अन्तर में सुनना चाहिए। गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है। गुरु का ध्यान करते-करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे, अथवा जब शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी अभ्यास को करने लगना चाहिए।

अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ-साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने नहीं रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा। नियमित ढंग से साधन में जब पुष्टता आएगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं। तस्वीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिए। अगर गुरु सामने मौजूद हों तो भी उनकी ख्याली शक्ल का ही ध्यान करना चाहिए, हालाँकि यह ख्याली शक्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरु-शुरु में अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा। चूंकि आत्मा के केंद्र में ही परमात्मा है अतः उनका अनुभव हासिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहाँ कोई ख्याल न हो।

ध्यान अन्तर में होवे, इसके लिए यह आवश्यक है की हमारी सुरत (अटेंशन) जो अभी बाहरी पदार्थों में लगी हुई है - वहां से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे। मन की धार यानी संकल्प-विकल्प जब तक शांत नहीं होंगे तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता। मन काल का अंश है। यह सुरत को दुनियावी पदार्थों की तरफ खींचता और बिखेरता रहता है। मन दुनियाँ में सबसे अधिक तीव्र

गति वाला और महा चंचल है, कभी शांत नहीं रह सकता। इसकी मिसाल शांत–प्रशांत तालाब के जल से दी गयी है। जैसे प्रशांत जल में हवा चलने से या हल्की से हल्की चीज फेंकने पर छोटी–छोटी तरंगें उठने लगती हैं वैसे ही इन्द्रियों के प्रभाव से या शरीर के जरा से हिलने मात्र से मन में संकल्प–विकल्प उठने शुरू हो जाते हैं।

योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा इत्यादि जो कुछ भी साधन किये जाते हैं, पहले पहल सब मन को शांत करने के लिए ही किये जाते हैं। इन तरंगों की रोक–थाम सुमिरन व भजन से की जाती है। इसमें भींचा–भीची करनी पड़ती है। मन को वासनाओं से हटाना भींचा–भीची कहलाती है। इसके लिए सन्त लोग कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकांत सेवन और ज्यादातर समय ध्यान में मशगूल (रत) रहने की सलाह देते हैं।

सुख प्राप्ति से मन मोटा होता है। सुख, साधन में महा बाधक होता है। परमात्मा की याद दुःख में ही आती है। इसीलिए दुखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है। कहा भी है –

"सुख के माथे सिल परे, जो नाम हिये से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल–पल नाम रटाय।।"

मन व माया को कमजोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें। जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता। आपा मिटे बगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और आत्मानुभव के बिना उद्धार नहीं होता है। स्वार्थ और परमार्थ साथ–साथ नहीं रह सकते। केवल एक ही रह सकेगा। खुदा को पाने के लिए खुदी को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनिया से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा। वैराग का यह मतलब कभी नहीं कि घर–बार, स्त्री, परिवार आदि को छोड़ कर जंगल में चला जाए। जंगल में जाने से भी भला वैराग हो सकता है? शरीर और मन तो वहां भी मौजूद रहेंगे। और जब ये रहेंगे तो इनके व्यवहार भी करने पड़ेंगे, सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज में राग (आसक्ति) न हो। शरीर से सब कुछ भोगता हुआ

भी किसी चीज से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो। चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को, अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज में अपने को लय कर दें। इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ आएंगी, परन्तु उनसे घबराएं नहीं, धैर्य पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करते जाएँ। कामयाबी अवश्य मिलेगी।

आत्म समर्पण का तरीका

कर्म के फल की इच्छा ही मनुष्य को जकड़ती है और पकड़ती हैं। समर्पण का अर्थ है इस बन्धन से छुटकारा पाना।

एक बार डा. सैय्यद ने महान ऋषि रमन से पूछा कि ''क्या आत्म समर्पण का सार यह लेना चाहिए कि साधक में हर इच्छा की मौत हो जाए अर्थात् ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा की मौत हो जाए अर्थात् ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा भी न रहे''। उत्तर में भगवान ने कहा कि– ''पूर्ण आत्म समर्पण यह है कि जीव में, मनुष्य में उसकी अपनी इच्छा कोई न रहे। ईश्वर की इच्छा ही जिज्ञासु की इच्छा हो जाये।'' डाक्टर सैय्यद बोले– ''कृपा करके मुझे बताएं कि आत्म समर्पण प्राप्त करने का क्या तरीका है ?''

ऋषि रमन बोले – ''दो तरीके हैं। एक तरीका यह है कि जहाँ से 'मैं' और 'मेरी' की भावना उठती है, उसमें गुम हो जाना, इसमें फ़ना हो जाना। दूसरा तरीका यह है कि मनुष्य बार–बार सोचे कि मैं कुछ नहीं कर सकता, मेरे हाथ में कुछ नहीं, सब कुछ कराने वाले प्रभु हैं। इसलिए मैं पूर्ण रूप से प्रभु अर्पण हो जाऊँ और अपने व

बार–बार ऐसा करने से मन से 'कर्त्ता–भाव' (अर्थात् यह भावना कि मैं कुछ कर सकूँ, मैं कुछ कर सकूँगा) मिट जाती है, अहंता का नाश हो जाता है।''

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

उपदेश

❖ याद रखो कि हरेक का इम्तहान ज़रूर होता है। बग़ैर इम्तहान पास किये किसी को कामयाबी का सेहरा नहीं मिलता। जो पढ़ता है, मेहनत करता है वही पास होता है। जो सन्तों के, गुरु के बताये रास्ते पर चलेगा वही इम्तहान भी पास करेगा, और जो चलेगा नहीं, पास क्या होगा?

❖❖❖❖❖

❖ सन्त लोग धार्मिक कर्मकाण्ड के बन्धन से ऊँचे होते हैं। हिन्दू मुसलमान का भेदभाव उनमें नहीं होता।

❖❖❖❖❖

❖ अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए–

1. जहाँ तक हो गुरु का सत्संग करें।
2. आन्तरिक अभ्यास–ध्यान, भजन, सुमिरन और मनन करते रहें।
3. अपने मन के ख़्यालों पर हमेशा निगाह रखें और बुरे ख़्यालों को हटा कर अच्छे ख़्याल कायम करते रहें। निश्चित है कि फ़ायदा होगा।

❖❖❖❖❖

❖ मनुष्य स्वतन्त्र है। वह स्वयँ अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों से चाहे तो वह पशु बन जाये, फरिश्ता (देवता) बन जाय और चाहे मुकम्मिल इन्सान (पूर्ण मानव)।

❖❖❖❖❖

❖ ग़रीब से तात्पर्य यह है कि उसके पास किसी और का बल नहीं

है। न तो वह संसार के ही किसी योग्य है और न वह परमार्थ की करनी ही भली प्रकार कर सकता है। ऐसे दीन पर मालिक खूब दया करता है और उसके सब काम भली प्रकार बनते चलते हैं।

❖❖❖❖❖

❖ मालिक की याद से ग़ाफिल न हों और मन में धीरज रखो। सब उल्टी सीधी हालतें आयेंगी और चली जायेंगी। आँधी आती है, वर्षा लाती है, शीतलता छोड़ जाती है।

❖❖❖❖❖

❖ जिसका कोई हाल पूछने वाला नहीं है और जिसे संसार के तथा उसके पदार्थों से कोई लगाव नहीं है, उसका पूछने वाला परमपिता परमेश्वर है।

❖❖❖❖❖

❖ यदि घरबार छोड़ने और संसार त्याग देने से ही मुक्ति मिल जाती तो मरते समय तो यह सब अपने आप ही छूट जाता है, क्यों मुक्ति नहीं मिलती? यदि इसी विधि से मुक्ति होती तो बहुतेरे लोग खुशी से मौत का आवाहन करते। मगर मरने से मुक्ति नहीं मिलती। विरक्त हो जाने और भेस धारण कर लेने से परमार्थ नहीं बनता।

❖❖❖❖❖

❖ स्त्रियों का पर्दा ज़रूर होना चाहिए। इसमें बहुत फायदे हैं। पर्दा आँखों का होता है। पुरुषों के साथ बेहयाई से मिलना, आज़ादी से बातचीत करना, कंधे से कंधा मिलाकर चलना, यह सब बेहयाई है। पर्दे के हम हामी नहीं हैं, लेकिन आँखों का पर्दा ज़रूरी है। जो इस तरह का पर्दा नहीं रखते उसका बुरा नतीजा उठाते हैं।

❖❖❖❖❖

❖ जब–जब मौका मिले सन्तों, गुरूजनों की सेवा करो। उनको ख़ुश करो, उनका सत्संग करो, उनके उपदेशों को हित–चित से सुनो। उन पर अमल करने की कोशिश करो। हमेशा पूरी कामयाबी होगी। कभी निराशा नहीं होगी। यही सच्चा, सीधा और सहज रास्ता ईश्वर को प्राप्त करने का है।

❖❖❖❖❖

❖ ईश्वर का पूजने वाला वास्तव में वह है जो दुनिया की कोई चीज नहीं चाहता, सिवायउसके प्यार के, और दुनिया की सब चीजें होते हुए भी बग़ैर उसके प्यार के दुःखी है।

❖❖❖❖❖

❖ उपराम होना यह है कि किसी चीज को भोगकर उस से तबियत इतनी भर जाय कि मन इधर–उधर न जाय और उसमें उसको रस न आए।

❖❖❖❖❖

❖ सन्त मत में मोक्ष की इच्छा भी नहीं रखते। सूफ़ियों में राज़ी–ब–रज़ा का सिद्धान्त अपनाते हैं। जिस हालत में परमात्मा रखे उसी में ख़ुश रहना, उसे सराहते रहना और उसकी याद से एक लहमे (क्षण) के लिए भी ख़ाली न रहना 'राज़ी–ब–रज़ा' की हालत कहलाती है।

❖❖❖❖❖

❖ परमात्मा की नजदीकी तो हासिल हो सकती हे लेकिन उसकी बराबरी नहीं हो सकती। उसकी बराबरी का दावा करना सरासर गुस्ताख़ी (धृष्टता) है।

❖❖❖❖❖

❖ ईश्वर एक है। वही सबका मालिक है, दूसरा उसका साझेदार नहीं। यदि वह कृपा करके अपने चरणों में जगह देता है, यही सामीप्य है। अगर कोई शख़्स (व्यक्ति) अपने नौकर से बहुत ख़ुश हो जाय और नौकर को अपने बराबर बैठने की जगह दे तो यह उसकी बड़ी कृपा अपने नौकर पर होगी। मगर क्या इससे नौकर मालिक की बराबरी का दावा कर सकता है? मालिक मालिक ही रहेगा और नौकर फिर भी नौकर ही रहेगा। अगर नौकर यह कहने लग जाए कि ''मैं मालिक हूँ'' तो यह एक गुस्ताख़ी होगी और इसकी सज़ा उसे मिलनी ही चाहिए।

कर्मकांड को धर्म नहीं कहते

भगवान बुद्ध शिष्यों सहित धर्म प्रचार करते हुए बिहार के एक गांव में पहुंचे । अनेक स्त्री-पुरूष उनका सत्संग करने व उनके प्रवचन सुनने आए। प्रवचन के बाद बिंदास नामक एक जिज्ञासु युवक ने तथागत से प्रश्न किया, प्रभु, सच्चा सुख कैसे मिलता है? क्या धार्मिक उपासना पद्धति से ही सुख व मोक्ष की प्राप्ति होती है? तथागत ने जवाब दिया, जो सत्य, अहिंसा और शील को अपनाता है और सदाचार पर अटल रहता है, उसी को सच्चा सुख मिलता है। सत्य का पालन करने वाले में ऐसी अनूठी शक्ति होती है कि लोग बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। जो अपने माता-पिता और वृद्धजनों की सेवा करता है और उन्हे संतुष्ट रखता है, उसे जो आत्मिक तृप्ति मिलती है, वह अन्य को मिलना दूभर है।

उन्होंने आगे कहा, कर्मकांड या पुरानी बातों के अधानुकरण को ध र्म नहीं कहते हैं। धर्म का अर्थ है कर्तव्य और सदाचार। यह दिखावे के लिए नहीं होता, बल्कि आचरण की वस्तु है। जो व्यक्ति धर्मानुसार जीवन जीता है, वह इहलोक व परलोक, दोनों में आनंद प्राप्त करता है। आत्मसंयम, श्रद्धा, शील और सत्य पर दृढ़ रहते हुए तृष्णा और अहंकार से सर्वथा मुक्त हो जाने वाला व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होता है। अतः सबसे पहले तृष्णा, मोह और ममता से मुक्ति पाने का संकल्प लेना चाहिए। बिंदास यह सुनकर तथागत के चरणों में झुक गया।

प्रवचन परमसंत डॉ.करतार सिंहजी साहब

प्रेम से ही परमात्मा की अनुभूति होती है

आजकल नवरात्रों के व्रत रखे जा रहे हैं, माँ की पूजा हो रही है। माँ क्या है? कोई शक्ति है जो परमात्मा से निकलती है। वो सर्व–व्यापक है। एक ही जगह सीमित नहीं है। उस शक्ति की अमृतधारा सब पर एक जैसी पड़ रही है। हमें उस शक्ति को ग्रहण करना है। उस शक्ति को ग्रहण करने का सीधा सा साधन है कि सरलता से बैठ जाएँ और मन ही मन बड़े प्रेम से ईश्वर का नाम लेते रहें। माँ की इस शक्ति की प्रसादी सबको प्राप्त हो सकती है। माँ किसी से भिन्न–भिन्न प्रकार का व्यव्हार नहीं करती, वो अपना स्नेह सबको देती है। उस प्रसादी को ग्रहण करने के लिए, जैसे एक छोटा सा नवजात शिशु अपनी माँ की गोद में बैठ जाता है, उसी प्रकार से हम भी बड़ी सरलता से, बड़ी सत्यता से, अपना बल छोड़कर माँ के चरणों में बैठे और प्रतीक्षा करें उस प्रसादी का, मन ही मन बड़े प्रेम से ईश्वर का नाम लेते रहें।

मनुष्य चाहे वह किसी भी धर्म का, किसी भी सम्प्रदाय का हो, किसी भी देश का हो, उसकी आंतरिक अभिलाषा, छिपी हुई चाह, यही होती है की उसको किसी भी प्रकार से ऐसी शान्ति मिले, ऐसा जीवन मिले जहाँ न मृत्यु हो, न बुढ़ापा हो, न बीमारी हो और न किसी प्रकार का अभाव हो, पूर्ण शान्ति हो। इसी शान्ति को हमने संक्षिप्त में 'नाम' भी कह दिया है। ये अक्षर मात्र अक्षर नहीं हैं। नाम और नामी परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। आत्मा परमात्मा को ही सच्चा नाम कहते हैं। उसी के लिए हम प्रार्थना करते हैं कि हमें भी एक नाम मिल जाय यानी ईश्वर हमारे रोम–रोम में बस जाये और हमारे भीतर में जो राक्षस बैठे हैं जिनके लिए हम आज से व्रत रख रहे हैं, वो खत्म हो जाएँ। मेरा चित्त निर्मल हो जाए और मैं भी विजयदशमी का त्यौहार सरलता

से मनाऊँ अर्थात मेरे भीतर में काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार रुपी जो शत्रु हैं, राक्षस हैं उन पर मैं विजय प्राप्त करूँ ताकि मैं भी भगवान राम का प्रतीक बन सकूं अर्थात मैं भी अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर सकूं, मैं भी अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला सकूं। मैं भी सच्चे योग की प्राप्ति कर सकूँ।

इस प्राप्ति के लिए दो मुख्य साधन हैं – एक निवृत्ति मार्ग और दूसरा प्रवृत्ति मार्ग अर्थात राजयोग। निवृत्ति मार्ग में संन्यास में सब कुछ त्याग देते हैं। घर–बाहर, धन–दौलत सब त्याग देते हैं। केवल एकांत में जाकर प्रभु का चिंतन करते हैं। परन्तु सन्यासी बनना प्रत्येक के बलबूते का काम नहीं हैं। सन्यासी अपना सिर मुड़वा देते हैं ताकि उनका एक भी संस्कार न रहे, उनकी आसक्ति बिलकुल ही खत्म हो जाए। उनका संसार के प्रति जो चिपकाव, मोह हैं, वह बिलकुल खत्म हो जाये। जब वह बिलकुल अग्नि–रूप हो जाता है तो उसका गुरु उसे अग्निरूप गेरुए कपड़े प्रदान करता है और तब वह समझता हैं कि अब यह व्यक्ति सन्यास का अधिकारी है। वास्तव में सन्यास के अधिकारी तो बहुत कम होते हैं। लाखों में से कोई एक–आध व्यक्ति ही होता हैं, बाकी ये जो गेरुए कपड़े पहने होते हैं वो सन्यासी नहीं कहलाते। सन्यासी तो अग्नि का रूप होता है। उसने सब कुछ जला दिया होता है और अग्नि–रूप बन कर वो दूसरों के भी मानसिक रोगों को जलाकर शुद्ध कर देता हैं, उनकी सेवा करता है और उनको भी अधिकारी बनाने का प्रयास करता हैं।

दूसरा मार्ग हैं राजयोग का यानि प्रवृत्ति मार्ग। इसको विस्तार से न कहता हुआ थोड़ा सा ही कहता हूँ – पारिवारिक जीवन व्यतीत करना यानि पारिवारिक जीवन कैसे व्यतीत करें? सब महापुरुषों की वाणी में, सब शास्त्रों में ये वर्णन हैं कि यदि स्त्री और पुरुष (पति–पत्नी) में पूर्ण सहयोग हैं, वे दो शरीर और एक मन हैं, एक आत्मा हैं, तो पति–पत्नी के इस प्रेम से ही आत्मा की अनुभूति हो सकती हैं, ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। यह तो आप सब ने सुना ही हैं कि पति जितना साधन करता

हैं, कमाई करता है और पत्नी उससे प्रेम करती है तो पति की आधी कमाई पत्नी को मिल जाती हैं। इसी प्रकार से यदि पत्नी कमाई करती हैं और पति उससे प्रेम करता हैं तो पति को पत्नी की आधी कमाई मिल जाती है। ये बिलकुल सत्य है। इसमें तर्क नहीं करना चाहिए। जिस परिवार में प्रेम नहीं, आपस में सहयोग नहीं, वहां सुबह से शाम तक कीर्तन होता रहे या और कुछ साध ान हो, उसका कोई लाभ नहीं। जिस परिवार में प्रेम हैं, शान्ति हैं, आनंद हैं, सहयोग हैं, सब लोग एक दूसरे के लिए तन–मन–ध ान न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, एक ने कहा दूसरे ने मान लिया, कोई तर्क नहीं करता, वहीं परलोक का सुख है। वहीं आत्मा की समीपता है।

आत्मा की अनुभूति तभी होती है जब मन की चंचलता खत्म हो जाती है तथा मन स्थिर हो जाता है। मन तभी स्थिर होता है जब मन में सद्विचार उठते हैं, मुख से मधुर वाणी निकलती है, व्यवहार से सद्गुणों का विकास होता हैं। तब जाकर मन स्थिर होने का अधिकारी बनता है। जैसे ही मन स्थिर हुआ कि आत्मा का प्रकाश होने लगता है। यदि पारिवारिक जीवन में ये तीन गुण हों – सहयोग हो, मधुरता हो, एक दूसरे के लिए बलिदान देने के लिए तैयार हों, तो दोनों ही शरीर भले ही पृथक–पृथक दिखते हों परन्तु उनका जीवन एकसुई का होगा, भिन्नता का नहीं होगा। उस एकता में दोनों के मन स्थिर हो जायेंगे और वे अधिकारी हो जायेंगे। अगर उनका जीवन इसी तरह प्रेममय होता गया तो एक क्षण ऐसा भी आएगा कि उनके भीतर जो आत्मा है उसका विकास हो जाएगा। हम जानते हैं कि दो व्यक्ति जब आपस में मिलते हैं, प्रेम करते हैं तो प्रेम में वे अपने आपको भूल जाते हैं। दो–चार क्षण मौन के ऐसे आते हैं जब दोनों व्यक्ति अपने आप को बिलकुल भूल जाते हैं। भीतर में एक पवित्र शांतिमय मौन के सूर्य का उदय हो जाता है। ये आत्मा की समीपता है और इसे ही बढ़ाना है।

विवाह में हम फेरों पर बैठते हैं। लड़का (वर) विष्णु भगवान

का प्रतीक बनता है। वह परमात्मा रूप, परमात्मा का प्रतीक अग्नि जो स्वच्छ है, उसी के आगे शपथ लेता है कि मैं परमात्मा विष्णु का प्रतीक, स्वरुप, बनकर लक्ष्मी रुपी स्त्री (वधु) की रक्षा करूँगा, उसकी सेवा करूंगा, उस पर सब कुछ न्योछावर कर दूँगा। इसी प्रकार लड़की (वधु) भी लक्ष्मी का रूप बनकर शपथ लेती है कि जैसे लक्ष्मी जी ने भगवन विष्णु की सेवा की, उनकी हृदयांगनी बनी, उसी प्रकार मैं भी अपने होने वाले पति की सेवा स्नेह के साथ करूंगी। दोनों ही उस पवित्र अग्नि के फेरे लेते हैं, जो शपथ दृढ़ करने का तरीका है। परन्तु इस वक्त (फेरे के समय) इतना शोरगुल मचता है कि हम उस उपदेश को सुनते ही नहीं और जो शपथ हम लेते हैं उस शपथ को भूल जाते हैं कि हमने क्या शपथ ली थी। इसीलिए हम देखते हैं कि आजकल परिवारों में सुख नहीं, शांति नहीं। इसका कारण यही है कि हम अपने दायित्वों को भूल जाते हैं। पति-पत्नी एक दूसरे को दोष देते हैं, जबकि उन्हें एक दूसरे को दोष नहीं देना चाहिए। उस अग्नि के समक्ष बैठ कर जब दोनों एक हो गए, प्रेम रूप हो गए, तो फिर दोष किसको दें। प्रेम में विभाजन नहीं है, प्रेम में एकता है, प्रेम में सुख है, शांति है। प्रेम में ही आत्मा परमात्मा है। पारिवारिक जीवन में परमात्मा की अनुभूति करने का बड़ा सरल साधन है। जितने भी महर्षि, जितने भी देवता, भगवान राम, कृष्ण, वशिष्ठ, ऋषि आदि हुए हैं सबने गृहस्थ आश्रम को ही अपनाया है। हमें चाहिए कि हमारे महापुरुषों ने इस पवित्र जीवन जीने का जो रास्ता बताया है हम उसको अपनाने का प्रयास करें। बाधाएँ आएंगी, अड़चनें आएंगी, संसार में रहते हुए अच्छे आदमी को अधिक अड़चनें आती हैं, अधिक बाधाएं आती हैं, हमें उनकी चिंता नहीं करनी चाहिए। ईश्वर का आश्रय लेकर, ऊँचे आदर्शों को ग्रहण करते हुए अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

ईश्वर सबका कल्याण करें।

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

जुन्नुन मिश्री

तपस्वी जुन्नुन मिश्रवासी थे। उनके तप का प्रभाव और तेज असाधारण था। वे तत्व ज्ञान के गूढ़ तत्वों को बताने वाले और कठोर साधना करने वाले थे। मिश्र के लोग उनके जीवन के मर्म को नहीं समझते थे और इसीलिए उन्हें अधर्मी मानते थे। उनके जीवनकाल में किसी ने उनके प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई। वे अपने हृदय के भावों को साधारण मनुष्य के आगे प्रगट नहीं करते थे। इसीलिए लोग उन्हें उनके जीवनकाल में पहचान नहीं पाये। उनके जीवन में परिवर्तन इस प्रकार हुआ था–

एक बार उन्होंने सुना कि अमुक स्थान में एक तपस्वी रहते हैं। वे उनका दर्शन करने गये। उन्होंने जाकर देखा कि तपस्वी पेड़ की डाल से औंधे लटक रहे थे और अपने आप से कह रहे थे– ''इरी अभागी काया, यदि तू धर्म–साधन में सहायक न होगी तो तुझे इसी प्रकार दुःख दूँगा, भूख और प्यास से तेरा नाश कर दूँगा।'' तपस्वी के ये वचन सुनकर जुन्नुन रो पड़े। रोने की आवाज सुनकर तपस्वी ने उन्हें पास बुलाकर कहा– ''गुनाह की कमी न होने पर जिसे शर्म लेशमात्र भी नहीं, उस पर दया करने वाला कौन?'' जुन्नुन ने इस कथन का स्पष्ट मतलब जानना चाहा। तपस्वी ने बतलाया– ''मेरा यह शरीर प्रभु की सेवा में मददगार नहीं होता, उसे तो लोगों के साथ हिलमिल कर बातें करना और मौज करना सुहाता है। इसीलिए मैं आज उसे संयम का आभास करा रहा हूँ।''

जुन्नुन ने कहा – ''क्या आपने किसी की हत्या अथवा दूसरा कोई भारी गुनाह किया है?''

तपस्वी– ''नहीं तो''

जुन्नुन– ''तो आप महा वैराग्यवान महात्मा हैं।''

तपस्वी– ''अरे नहीं, तुम्हें असली वैराग देखना हो तो सामने के पर्वत शिखर पर जाओ।''

जुन्नुन ने पहाड़ की चोटी पर जाकर देखा एक झोपड़ी के द्वार पर एक त्यागी बैठे हैं। उनका एक पैर झोपड़ी के भीतर था और दूसरा कटा हुआ पैर झोपड़ी के बाहर पड़ा था। उस पर चीटियाँ लगी हुई थीं। जुन्नुन ने पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और सारी हकीकत पूछी।

त्यागी ने बताया– ''मैं एक दिन अपनी झोपड़ी में बैठा था। सामने से एक युवती स्त्री निकली। उसे देखने के लिए मेरा मन चंचल हो उठा। रखते ही मैंने देववाणी सुनी। ''अरे साधु! तुझे ज़रा भी शर्म नहीं? तीस वर्ष से तू भजन करता है और प्रभु भक्त कहलाता है, तो भी शैतान के फंदे में फँस गया।''

ऐसी वाणी सुनकर मैं काँप उठा। झोपड़ी के बाहर जो मैंने पाँव रखा था उसे मैंने ही काटकर बाहर फेंक दिया और उसी समय से बैठा मैं देख रहा हूँ कि अब क्या होता है? भाई, तू मेरे जैसे पापी के पास क्यों आया? यदि तुझे प्रभु परायण धार्मिक महात्मा के दर्शन करने हैं तो उस पर्वत पर जाकर देख।''

जुन्नुन उनके बताये हुए पर्वत पर न चढ़ सके। निराश वापस लौटकर उन्होंने उसी त्यागी से उस दूसरे महात्मा का हाल पूछा। त्यागी बोले– ''उस पर्वत पर बहुत काल से एक साधु पुरुष तप कर रहे हैं। एक दिन किसी ने आकर उनसे कहा– ''यदि आदमी व्यापार धंधा न करे तो जीविका कैसे चले? उद्यम पर ही तो जीविका का आधार है, केवल ईश्वर के अनुग्रह से क्या होता है।''

यह सुनकर उन्होंने उसी वक्त प्रतिज्ञा की– यदि मनुष्य उद्योग न करे तो क्या ईश्वर उसका निर्वाह चलाने में असमर्थ होगा? मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि मनुष्य के द्वारा उपार्जित किसी भी वस्तु का उपभोग नहीं करूँगा।''

उस प्रतिज्ञा के मुताबिक कई दिनों तक तो उन्होंने कुछ भी नहीं खाया। आखिर उस करुणामय प्रभु ने मधुमक्खियों का एक

दल भेजकर उनकी रक्षा की। उन मक्खियों के मधु ही से अब उनका पोषण होता है।''

यह सब हकीकत देख–सुनकर जुन्नुन का दिल पिघल गया और उन्हें विश्वास हो गया कि जो ईश्वर का भरोसा रखते हैं, ईश्वर अवश्य उनका निर्वाह करते हैं। वहाँ से लौटते समय मार्ग एक अंध ो पक्षी को वृक्ष से नीचे आते देखकर उन्होंने यह जानने का विचार किया कि इस अंधे और हतभागी पक्षी को खुराक कहाँ से और कैसे मिलती है। उन्होने देखा कि पक्षी ने नीचे उतरकर जमीन में चोंच मारी। वहीं अनाज के कुछ दाने और जल की बूँदे मिल गईं। खा पीकर पक्षी वृक्ष पर वापस लौट आया। यह दृश्य देखकर वे से हो गये और ईश्वर पर उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। वास्तव में उनके नवजीवन का अभ्युदय उसी घड़ी से हुआ।

जुन्नुन अपने मित्रों के साथ एक रात एक जगह बैठे थे। वहाँ पहले किसी धनवान का मकान था। उस जगह को खरोचने से उन्हें बहुत सा सोना मिल गया, उस सोने पर ईश्वर का नाम अंकित था। जुन्नुन के मित्र उस सोने को बाँट लेने के लिए तैयार हो गये। किन्तु जुन्नुन ने उनसे असहमत होते हुए कहा– ''इस सोने पर तो मेरे सखा का नाम अंकित है, उसे तो मैं लूँगा।'' उस सोने को माथे से लगाकर उन्होंने उसे प्रभु के निमित्त परमार्थ में लगा दिया। उसी रात को उन्होंने स्वप्न में सुना– ''जुन्नुन! धन की अभिलाषा सभी करते हैं, परन्तु तूने उससे भी अच्छी अभिलाषा की है। तूने मेरे नाम के प्रति प्रीति दिखाई है, मैं तुम पर खुश हुआ हूँ, मैंने तेरे लिए तत्व ज्ञान का द्वार खोल दिया है।''

जुन्नुन ने कहा –''एक बार मैं नदी के तट पर गया। ज्यों ही मैं वजू करने के लिए पानी में उतरा, मेरी दृष्टि एक मकान की छत पर पड़ी। वहाँ मैंने एक अतीव सुन्दरी युवती को खड़े देखा। मैंने उससे पूछा– 'हे सुन्दरी! तू किसकी स्त्री है?'

युवती ने कहा– 'जुन्नुन मैंने तुम्हें दूर से देखकर उन्तत्त जाना। नदी के तट पर आने पर ज्ञानी जाना और भी नजदीक आने पर तुम्हें ईश्वरदर्शी साधु जाना। पर मालूम होता है तुम न तो उन्मत्त

हो, न ज्ञानी और न ईश्वरदर्शी साधु'।

मैंने युवती से उसके कथन का स्पष्टीकरण पूछा तो उसने बतलाया ''यदि तू ईश्वर के प्रेम में पागल होता तो वजू नहीं करता, ज्ञानी होता तो दूसरे की स्त्री पर नज़र नहीं डालता ओर जो ईश्वरदर्शी होता तो ईश्वर को छोड़कर तेरी नज़र दूसरी ओर नहीं दौड़ती।''

इतना कहकर वह युवती गायब हो गई। मैंने उस युवती को देवदूती समान समझा। मेरे मन की आग भभक उठी। ज्ञानशून्य सा होकर मैं वहीं पानी में गिर पड़ा। एक व्यापारी की नाव जा रही थी, उसने मुझे बचा लिया। उस व्यापारी के कीमती मोती खो गये थे, उन्होंने मोतियों की चोरी का शक मुझ पर कर लिया था। वे मुझे अनेक कष्ट देने लगे, तो भी मैं शान्त बना रहा। वे मुझे पीटते तब मैं केवल यह कहता– ''हे प्रभु! तू ही सब जानता है।'' बाद में वे माती दूसरी जगह मिल गये। मुझे निर्दोष मानकर उन्होंने मेरे पाँव पकड़कर क्षमा माँगी।''

तपस्वी जुन्नुन ने तप की कठोर साधना की थी। उनकी संगति से उनकी बहन भी तपस्विनी हो गई थीं।एक दिन एक पहाड़ पर घूमते समय जुन्नुन ने बहुत से रोग पीड़ितों को एक जगह इकठ्ठे देखा। कारण पूछने पर उनमें से एक ने बताया कि यहाँ झोपड़ी में एक तपस्वी रहते हैं और वर्ष भर में एक बार वे बाहर आकर फूँक मारकर लोगों का रोग दूर कर देते हैं और फिर झोपड़ी में लौट जाते हैं। उनके बाहर आने का दिन होने के कारण प्रतीक्षा में सब रोगी बैठे थे।

कुछ देर बाद वे तपस्वी बाहर आये। उनका शरीर हड्डियों का ढाचां सा था, शरीर का रंग एकदम पीला और आँखे गड्डों व घुसी हुई थीं, परन्तु उनके चेहरे पर तेज बरस रहा था। उस परम तेजस्वी ने बाहर आकर स्नेह भरी स्थिर दृष्टि से कुछ देर देखकर दृष्टि आकाश की ओर उठाई। अंत में प्रत्येक रोगी पर एक–एक फूँक मारकर उन्होंने उसे रोग से मुक्त कर दिया। उन्हें वापस झोपड़ी में लौटते देखकर जुन्नुन ने आगे बढ़कर उनके पाँव पकड़कर कहा –

''महात्मन्! आपने बाह्य रोगियों को तो रोग–मुक्त कर दिया पर मैं तो मानसिक दुःख भोग रहा हूँ। ईश्वर के नाम पर मैं माँगता हूँ, मुझे निरोग कीजिए।''

उस तपस्वी ने उत्तर दिया– ''जुन्नुन! मुझे छोड़ दे। महिमा ओर गौरव के उच्च सिंहासन पर आसीन मेरा और तेरा वह मित्र यह सब देख रहा हे। तू उसे छोड़कर मेरी शरण ले रहा है, इससे तो हम दोनों दोष के भागी होंगे।'' इतना कहकर तपस्वी अपनी कुटिया में लौट गये।

एक बार तपस्वी जुन्नुन को रोते देखकर किसी ने उसका कारण पूछा तो वे बोले– ''गत रात मैंने सपना देखा कि कोई कह रहा है कि– ''अपने रचे हुए सब मनुष्यों के आगे मैंने एक संसार रखा है। उसमें से हजार में से नौसौ उस संसार को ग्रहण करते हैं और एक सौ उसका त्याग और उन सौ त्यागियों के आगे स्वर्ग की लालसा रखता हूँ तो उनमें से नब्बे त्यागी स्वर्ग के लोभ में आते हैं और केवल दस स्वर्ग की उपेक्षा करते हैं। स्वर्ग की उपेक्षा करने वाले उन दस को जब नरक का डर दिखाता हूँ तो उनमें से नौ डरकर भाग जाते हैं। केवल एक निर्भय स्थिर रहता है। तात्पर्य यह है कि हजार में से केवल एक ऐसा होता है जो संसार की माया से मुग्ध नहीं होता है, स्वर्ग की लालसा नहीं करता है और नरक से भी भयभीत नहीं होता।''

एक बालक ने वसीयत में एक लाख मुद्रा पाकर उन्हें जुन्नुन को देने का इरादा जाहिर किया तो उन्होंने उसे यह कहकर रोक दिया कि इक्कीस वर्ष से कम आयु होने के कारण तुम्हें दान करने का अधिकार नहीं है, अभी धीरज रखो।

समय पाकर वह बालक बड़ा हुआ। तपस्वी जुन्नुन का शिष्य बनकर अपनी सारी दौलत फकीरों को बाँटकर खुद गरीब बन गया। कुछ समय बीतने पर उसने देखा कि वे फकीर फिर खाली हो गये। अ बवह चिंता करने लगा कि हाय मेरे पास कुछ भी नहीं बचा। एक लाख मुद्रा और होतीं तो उन्हें फिर बाँट देता।

युवक की यह चिंता देखकर महर्षि जुन्नुन ने समझा कि अभी इसे धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं हुआ। अभी इसे सांसारिक दौलत की ही कीमत मालूम है। उसका वह मोह छुड़वाने के लिए उन्होंने युवक से कहा– ''तपस्वी अपने पास धन न होने से दुःखी नहीं होते। वे तो द्रव्य पाकर स्वेच्छाचारी होना चाहते ही नहीं। उनकी तो अभिलाषा होती है तप और धर्म रूपी धन पाना।''

एक दिन एक युवराज अपने नौकरों के साथ मसजिद के पास से जा रहा था। उसने जुन्नुन को कहते सुना– ''खुद कमजोर होकर जो अपने से बलवान के साथ विरोध करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा?'' वह जुन्नुन के पास आया और इस कथन का तात्पर्य पूछा। जुन्नुन ने बताया– ''मनुष्य खुद बहुत ही दुर्बल है, फिर भी वह महा प्रबल परमात्मा का विरोधी बनता है।'' यह सुनकर युवराज का चेहरा उतर गया और वह बिना कुछ बोले वहाँ से चल दिया। कुछ दिन बीत जाने पर उसने आकर जुन्नुन से पूछा– ''महात्मन्! प्रभु के पास जाने का रास्ता कौन सा है?''

जुन्नुन बोले– ''भाई! प्रभु के पास जाने के दो रास्ते हैं, एक साधारण और दूसरा असाधारण। यदि तू साधारण रास्ते से जाना चाहता है तो पाप संसार ओर इंद्रियों की प्रवृत्ति का त्याग कर, और यदि असाधारण मार्ग से जाना चाहते हो तो अन्तःकरण को पूरी तरह विषय रहित बनाकर उसे ईश्वर में लीन कर दे, ईश्वर के सिवा सब बातें भूल जा।''

राजकुमार ने असाधारण मार्ग पकड़ा। अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण का त्याग कर उसने फकीरी बाना धारण किया। साधना में प्रवृत्त होकर वह आगे जाकर एक सच्चा तपस्वी बन गया।

महर्षि जुन्नुन का जीवन बहुत उन्नत था। लोग उनके स्वरूप को नही पहचान पाये थे। सभी मिश्रवासी उन्हें काफिर, परधर्मी समझते थे। उस समय मत–उक्कोल नाम का एक व्यक्ति बगदाद का खलीफा था। मिश्र देश भी उसके अधीन था। लोगों ने जुन्नुन के विरुद्ध उसके कान भरे। खलीफा ने जुन्नुन को पकड़ बुलाया।

खलीफा के आगे जब वे बंदी की हालत में खड़े थे, तब एक बुढ़िया ने आकर धीरे से उनके कान में कहा– ''इस खलीफा से जरा भी न डर। तू तो ईश्वर का दास है। बिना उसकी इच्छा के उसके दास का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।''

खलीफा की आज्ञा से जुन्नुन कैदखाने में भेज दिए गये। खलीस दिन तक वे कैद में रहे। तपस्वी बशर शाफर की बहन रोज कैदखाने में उनके लिए रोज रोटी भेजतीं, पर चालीस दिन तक उन्होंने एक भी टुकड़ा नहीं खाया। बशर की बहन को जब यह हाल मालूम हुआ तो उसे बहुत दुःख हुआ और उसने जुन्नुन को कहलाया कि ''मैं जो रोटी भेजती हूँ वो निर्दोष और पवित्र अन्न की बनी है। आप उन्हें क्यों नहीं खाते?''

जुन्नुन ने उत्तर भिजवाया– ''मेरे तक पहुँचने में ये रोटियाँ पाक नहीं रहती, बीच ही में कैदखान वाले छूकर उन्हें नापाक कर देते हैं।'' चालीस दिन के बाद वे कैद से बाहर निकाले गये। भूख प्यास से अशक्त हो चुके जुन्नुन चलते–चलते गिर पड़े। उनके सिर में चोट लगी और खून बहने लगा। खलीफा के सामने हाजिर किये जाने पर उन्होंने अपने उपदेशों का मतलब विस्तार से उसे सुनाया। खलीफा मत–उक्काल और उसके दरबारी उनकी बातें सुनकर रो पड़े। जुन्नुन की असर करने वाली बोली से सारे लोग मुग्ध हो गये। खलीफा ने जुन्नुन का शिष्य बनकर उन्हें बड़े आदर से मिश्र वापस भेज दिया।

जुन्नुन के एक शिष्य ने चालीस बार चेला किया, अर्थात् निजग्न स्थान पर बैठकर चालीस दिन तक विशेष रूप से भजन साधन किया। उसने और भी कठिन साधनायें कीं। एक दिन उसने आकर जुन्नुन से कहा– ''मैंने अनेक कठोर साधनायें की तो भी परमात्मा मुझसे नहीं बोला, उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। अपनी बढ़ाई के लिए नहीं कहता, सचमुच मैंने कहुत कष्ट उठाकर, तन–मन लगाकर प्रभु की सेवा की है परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि अभी तक प्रभु का कृपा पात्र नहीं बन पाया। मैं साधनाओं से उकता सा गया हूँ। मुझे डर है कि कहीं मेरा जीवन निराशा ही में न बीत जाये? मैंने बहुत

समय तक प्रभु का द्वार खटखटाया पर वह चुला ही नहीं। भीतर से एक शब्द भी नहीं सुनाई दिया। मैं बहुत दुःखी हूँ, कृपा कर मेरे दुःख को दूर करने का उपाय बतायें।

महर्षि जुन्नुन ने कहा– ''जाओ, आज रात को खूब खाना खाओ। रात को नमाज मत पढ़ो, खूब सोओ और जब तक खुदा खुश होकर दर्शन न दे दें इसी प्रकार चलते रहो। आखिर खुदा गुस्से में आकर तुम्हें सजा देने के लिए आवेगा ही। उसने आज तक तुम्हारी ओर करुणा भरी निगाह से नहीं देखा है तो अ बवह ज़रूर गुस्से में होगा।''

यह सुनकर वह शिष्य चला गया। उसने खाया पिया तो खूब पर सांझ की नमाज पढ़े बिना नहीं रह सका। नमाज पढ़कर सो गया। नींद में उसने हज़रत मुहम्मद साहब को सपने में देखा। उन्होंने कहा– ''तेरे सखा ने तुझे सलाम कहलाया है और आज्ञा दी है कि जो मेरे मन्दिर में आकर सहज ही उकता जाता है वह कायर पुरुष है। साधना में तो दृढ़ संकल्प और अपार उत्साह की आवश्यकता है। चालीस वर्ष से तुम जो चीज़ चाहते हो, वही मैं तुम्हारी गोद में देना चहता हूँ। पर एक काम करना उस दुष्ट चोर जुन्नुन को मेरा सलाम कहकर कहना कि ऐ मिथ्यावादी दुश्मन! यदि सारे शहर में मैं तुझे बदनाम न करूँ तो मेरा तेरा प्रभु नहीं। जब तक मैं ऐसा नहीं करूँगा तू मेरे प्रेम में मस्त और मेरे आश्रितों को उल्टे रास्ते चलाना न छोड़ेगा।

यह स्वप्न देखकर वह जाग उठा और रोने लगा। जुन्नुन के पास जाकर उसने सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर कि ईश्वर ने उन्हें सलाम कहलाया है और साथ ही चोर और मिथ्यावादी कहा है, जुन्नुन की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वे सोचने लगे कि कोई भी उपदेशक अपने शिष्य को उपासना न करने को कहे तो क्या यह उचित है? पर उपदेशक तो एक हकीम है। रोगी के लाभ के लिए यदि ठीक मालूम दे तो हकीम को विष का भी प्रयोग करना पड़ता है। जुन्नुन ने अपने शिष्य पर ऐसा ही प्रयोग यह समझकर किया था कि उसका शुभ फल होगा और प्रभु प्रसन्न

होगें। उन्हें विश्वास था कि यह धार्मिक व्यक्ति बिना नमाज पढ़े नहीं रह सकेगा। ईश्वर ने इब्राहिम को पुत्र का बलिदान देने की आज्ञा दी थी, पर यही समझकर कि वह पुत्र हत्या नहीं करेगा। यही बात यहाँ भी हुई।

महात्मा जुन्नुन एक बार बर्फ से ढकी ज़मीन पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति जमीन पर अनाज के दाने बिखेर रहा था। महात्मा जुन्नुन ने उससे पूछा– ''भाई! ज़मीन तो बर्फ से ढकी है, तू उस पर अनाज क्यों बिखेर रहा है? यहाँ तो कुछ उगने वाला नहीं।''

उस आदमी ने उत्तर दियाः ''आज बर्फ से सारी जमीन ढक गई है पर बिचारे पक्षियों को खोजने पर भी कहीं खाने को नहीं मिलेगा। उन्हीं के लिए मैं ये दाने बिखेर रहा हूँ। यहाँ आने पर पक्षियों को सहज ही दाना मिल जायेगा और प्रभु मुझ पर प्रसन्न होंगे।

जुन्नुन– ''ईश्वर से विमुख व्यक्ति भी यदि बीज बोवे, दान पुण्य करे तो क्या उसका फल होगा? ईश्वर क्या उसे मंजूर करेगा?

वह आदमी– ''मंजूर करेगा या नहीं, वह देखना यही का जायेगा। अभी तो मुझे अपना यही कर्त्तव्य दिखाई देता है।

कुछ समय पश्चात्त जुन्नुन मक्का गये। वहाँ उसी अनाज बखेरने वाले को उन्होंने एक परम भक्त की तरह काबा की प्रदक्षिणा करते देखा। जुन्नुन को देखकर वह बोला– ''क्यों भाई! देखा, प्रभु ने मेरी सेवा मंजूर की या नहीं? मेरे बोये बीजों में फल आये या नहीं? मुझ पर दया करके प्रभु ने मुझे यह पवित्र तीर्थ दिखाया या नहीं?

यह बात सुनकर जुन्नुन बडे आनन्दित हुए। वे बोल उठे– ''हे प्रभु! तेरी दया क्या बखानूँ? चालीस वर्ष के इस अभक्त मनुष्य को तूने एक मुठ्ठी अनाज के दानों से अपने पास बुलाकर उसके लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया। मैं तेरे गुण क्या गाऊँ?

इतने में उन्हें अज्ञात वाणी सुनाई दी– ''जुन्नुन! ईश्वर किसी को अपनी ओर खींचता है तो किसी मतलब ही से। प्रभु के काम

में तू क्यों बीच में आता है। तेरी बुद्धि की तो एक हद है, पर ईश्वर का ऐश्वर्य निःसीम है।''

महर्षि जुन्नुन जब मृत्यु शैया पर थे तब उनके आत्मीय जनों ने पूछा– ''आपकी कोई अभिलाषा हो तो कहें।'' वे बोले– ''मेरी तो यही अभिलाषा है कि जिसके नजदीक मेरी मौत हो रही है, अपने उसी सखा का मैं फिर भजन क लूँ, उसे जान लूँ और देख लूँ। इतना कहकर उन्होंने एक प्रेम और भक्ति भाव भरी अरबी की कविता कह सुनाई। फिर एक दिन वे पीड़ा से बेहोश हो गये। यूसुफ हुसैन नाम के एक कुटुम्बी ने उनसे आखिरी उपदेश माँगा, तब वे बोले– ''अब मेरे मन को दूसरी बातों की ओर आकर्षित मत करो। इस समय मैं अपने प्रभु की करुणा में डूब रहा हूँ।'' इतना कहते–कहते उस महात्मा ने शरीर का त्याग कर दिया।

जब उनका शव श्मशान ले जाया जा रहा था, उस समय ध ूप तेज थी। कहते हैं पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड आकर ऊपर उड़ने लगे और उन्होंने अपने पंख फैलाकर शव पर छाया कर दी। उनके जीवन काल में जो मिश्रवासी उनसे ईर्ष्या करते थे, उन्हें देखकर जलते थे, वे ही उनके देहान्त के बाद अपने किये पर पछताने लगे, खुद अपनी निन्दा करने लगे।

उपदेश वचन

1. विपत्ति को सह लेने में अचरज नहीं है, अचरज है वैसी हालत में भी शान्त रहना।
2. जब तक लोक और लौकिक पदार्थों में आसक्ति रहेगी, तब तक ईश्वर में सच्ची आसक्ति नहीं हो सकेगी।
3. ईश्वर का कहना है कि जब मैं अपने दास पर प्रेम करता हूँ तब मैं खुद उसकी आँख, कान और हाथ आदि बन जाता हूँ। मेरा दास मेरे द्वारा ही देखता है, सूनता है, बोलता है और मेरे द्वारा ही सारा लेन–देन करता है।
4. ईश्वर का स्मरण मेरी जिन्दगी की खुराक उसकी प्रशंसा मेरी जिन्दगी का पेय और उसकी लज्जा मेरी जिन्दगी के कपड़े हैं।

5. दानादि सत्कर्मों को करते समय होने वाली अपनी प्रशन्सा की ओर कान भी न दो। वह प्रशन्सा तुम्हारी नहीं उस ईश्वर की महिमा है।
6. ईश्वर की कठोर से कठोर आज्ञा का पालन करने में भी प्रसन्न होना सीखो। ईश्वर का आदेश सुनने, समझने की इच्छा हो तो पहले अभिमान छोड़कर आदेश को सुनकर उसके पालन में जुट जाओ। भयानक विपत्ति में भी हर एक साँस के साथ प्रभु की प्रीति बनाये रहो।
7. सहनशीलता और सत्यपरायणता के बिना प्रभु–प्रेम पूर्णता को प्राप्त नहीं होता।
8. सच्चे प्रभु प्रेमी के दो लक्षण हैं? स्तुति निन्दा में समभाव रहना और धर्मपालन और अनुष्ठान में कोई लौकिक कामना न रखना।
9. विश्वास के तीन लक्षण हैं–
   1. सब चीजों में ईश्वर को देखना।
   2. सारे काम ईश्वर की ओर नजर रखकर ही करना और
   3. हरएक हालत में हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान के आगे ही।
10. जिसका बाह्य जीवन उसके आंतरिक जीवन के समान नहीं है, उसका संसर्ग मत करो।
11. जो मनुष्य गम्भीरता पूर्वक प्रभु–स्मरण करता है वह दूसरे सब पदार्थों को भूल जाता है, उसे तो सभी पदार्थों में एक वही प्रभु दिखाई देने लग जाता है।
12. यदि तुमने ईश्वर को पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचानने वालों से दोस्ती करो।

मालिक की मौज में मस्त मेरे मौला ने दिया दुर्लभ संदेश

सेवक पूज्यपाद परम संत डॉ श्रीकृष्णलाल जी महाराज के दर्शनों के लिए बहुधा सिकन्दराबाद जाया करता था। दोपहर बाद गाज़ियाबाद से वहाँ पहुँचता और एक डेढ़ घंटे उनके पास रहकर वापिस चला आता। वास्तव में यह उनका प्रेम था जो मुझे खींचता था। एक दिन जब वह दर्शन करने गया तो आप अपने प्यारे प्रीतम परम पिता परमेश्वर के ध्यान में सहज समाधि में बैठे थे। आँखें प्रीतम के सरूर में डूबी हुई थीं। चेहरे पर तेज विराजमान था। अत्यन्त प्रसन्न और महा-आनन्द की मुद्रा में थे कि उसका कुछ कहना नहीं।

सेवक ने चरण छुए। वे बोले 'लिखो' – सेवक से वे यदा-कदा कुछ लिखवाते तो रहते थे परन्तु इस प्रकार अनायास आज्ञा कभी नहीं दी थी। कलम जेब से निकाल कर पास पड़े एक पुराने कागज़ के टुकड़े पर लिखना शुरु किया। अपने प्यारे प्रभु के लिए उनके श्रीमुख से जो शब्द मुखरित हुए वे केवल थोड़े से हैं। प्रेम पूर्वक, आदरपूर्वक उन्हीं का स्मरण करके पढ़ियेः-

''मेरा प्यारा बड़ा छलिया है। अनेक रूपों में अपने आपको छुपा का मुझ को भ्रम में डालता है। कहीं राम बना, कहीं कृष्ण, कहीं मौहम्मद तो कहीं मसीह लेकिन मैं उसकी मौहब्बत की बू से उसको पहचान लेता हूँ और हरेक में उसी प्रीतम का जलवा देखता हूँ, चाहे वह किसी रूप में क्यों न हो।''

''सच्चे प्रेमी हरेक रूप में उसी प्रीतम का जलवा देखते हैं और दिल से इज़्ज़त और प्रेम करते हैं, लेकिन जिनको उसकी माया ने अंधा कर रखा है वह उसको न पहचान कर उसके बाहरी

रूप पर जाते हैं और आपस में लड़ते–झगड़ते हैं। यहाँ पर सिवाय उस प्रीतम के और कौन ?''

''एक दफा मीराबाई जीव गोस्वामी से मिलने वृंदावन गईं। सन्त जीव गोसाईं जी औरतों को अपना दर्शन नहीं देते थे। मीराबाई ने अपने आगमन की ख़बर कराई और दर्शन की इच्छा ज़ाहिर की। जीव गोसाईं जी ने कहला भेजा कि मैं औरतों को दर्शन नहीं देता। यह सुनकर मीराबाई ने बहुत आश्चर्य प्रगट किया और कहने लगीं– ''मैं तो अब तक यही समझ रही थी कि वृन्दावन में सिर्फ एक पुरुष प्यारा कृष्ण ही बसता है। आज मालूम हुआ कि उसके अलावा यहाँ कोई और पुरुष भी है।''

जब यह बात जीव गोस्वामी जी तक पहुँचाई गई तो वे रो पड़े। अपनी ग़लती पर परेशान हुए। भागे हुए आए और मीराबाई से क्षमा चाही।''

उपरोक्त छोटी सी भावना लिखाकर वे मौन हो गए। वास्तव में वे भगवान के सच्चे प्रेमी थे। ईश्वर प्रेम उनमें मूर्तिमान था और सब जगह सब वस्तुओं में, चराचर में उन्हें वही प्रीतम दिखता था, जिसे उन्होंने 'मेरा प्यारा छलिया' कहकर सम्बोधित किया था।

ऐसी आनन्दमयी, प्रेममयी छवि में उनके दर्शन दुर्लभ होते थे और उन्हीं की असीम कृपा से यदा–कदा किसी बड़े भाग्यवान को मिलते थे। कहते हैं कि ऐसे दर्शनों की छाप आजीवन रहती है और उस सौभाग्यशाली घड़ी में जो प्रेम की दात मिलती है वो अटल होती है। ईश्वर करे सबको उनका अविरल प्रेम प्राप्त हो।

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

(लेखक– डॉ. महेश चन्द्र, गाज़ियाबाद)

सच्ची सम्पदा

एक सेठ था। उसके पास बहुत सम्पत्ति थी। वह बहुत सन्तुष्ट था। अचानक एक दिन उसने हिसाब लगाया कि उसकी दौलत उसके और उसके बच्चों के लिए ही काफी होगी, लेकिन बच्चों के बच्चों के लिए क्या होगा ? यह विचार आते ही सेठ भारी चिन्ता में पड़ गया।

संयोग से उन्हीं दिनों एक महात्मा उस नगर में आये, जो सबकी ख़्वाहिश पूरी कर देते थे। सेठ उनके पास पहुँचा और कहा, ''महाराज, मुझे इतनी दौलत चाहिए कि मैं भोगूँ, मेरे बच्चे भोगें, उनके बच्चे भोगें कभी खत्म न हो।''

महाराज ने कहा ''ऐसा ही होगा। तुम्हारे घर के पास टूट-फूटी झोपड़ी में एक सास-बहू रहती हैं। कल उनको एक दिन के खाने जितना राशन दे आना। बस, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी।''

सेठ की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसकी रात बड़ी मुश्किल से कटी। दिन निकलते ही वह राशन लेकर झोपड़ी पर पहुँचा। देखा, सास ध्यान (meditation) में लगी है, बहु झोपड़ी की सफाई कर रही है।

सेठ ने बहु से कहा- ''यह लो, तुम्हारे लिए दाल, आटा, घी, नमक लाया हूँ।''

बहु ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। बोली- ''हमें नहीं चाहिए, हमारे पास आज के खाने के लिए है।''

''तो क्या हुआ।'' सेठ ने कहा- ''कल काम आ जायेगा।''

बहु बोली- ''हम अगले दिन के लिए संग्रह नहीं करते। परमात्मा हमें रोज देता है।''

सेठ अवाक रह गया। सोचा, ''एक ओर ये लोग हैं जो कल की चिन्ता नहीं करते और दूसरी ओर मैं हूँ, जो बच्चों के बच्चों की चिन्ता में मरा जा रहा हूँ।''

उसकी आँखें खुल गईं। उसने फिर धन की लालसा नहीं की। महात्मा कबीर की वाणी है-

''साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।''

योग क्या है

प्राचीन काल से ही सभी देशों की आम जनता ने धर्म को रहस्यों, चमत्कारों और अलौकिक घटनाओं से जोड़ा है।

कुछ व्यक्ति योगी और महात्मा की तलाश में हिमालय जाते हैं और जब वहाँ कोई ऐसा नहीं मिलता जो उन्हें चमत्कार दिखा सके, तो वे बुरी तरह निराश होकर लौट आते हैं।

हिमालय में एक आश्रम से जुड़े होने के कारण लेखक ने कुछ व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त किये हैं, जिनमें कुछ तो बड़े ही कौतूहलपुर्ण हैं और कुछ अत्यन्त नैराश्यपूर्ण। ये अनुभव इस सम्बन्ध में हैं कि कभी–कभी लोग योगी और काल्पनिक महात्माओं के सम्बन्ध में कैसे विचित्र विचार रखते हैं, जो इन पर्वतों में रहते हुए माने जाते हैं। एक बार एक अमेरिकन ने यह जानने के लिए पत्र लिखा कि क्या वह योग–साधना के लिए हिमालय आ सकता है? जब उसने यह जवाब पाया कि अगर मन में भगवान के प्रति विश्वास और भक्ति है, तो वह घर पर ही योगाभ्यास कर सकता है, तो वह बड़ा निराश हुआ। यह मस्तिष्क की दुर्भाग्यपूर्ण धारणा का विचित्र उदाहरण है, जो यह दिखाता है कि धर्म के मामले में सामान्य ज्ञान कितना असामान्य है।

वे लोग जो बहुत दिनों तक हिमालय में रह चुके हैं और निष्ठावान हैं, स्वीकार करेंगे कि केवल ऊँचे पहाड़ों की निकटता ही योग प्राप्ति के लिए काफी नहीं होती। निस्सन्देह हिमालय का वातावरण अनेक सुविधायें प्रदान करता है, लेकिन केवल यही किसी व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक सफलता की गारन्टी नहीं है। हिमालय की गुफाओं की खोज द्वारा भले कोई व्यक्ति क्षणिक शान्ति या जीवन के कष्टों से विराम पा ले किन्तु मन की चंचलता शीघ्र ही लौटेगी और अपना वही पुराना खेल खेलेगी।

योग क्या है, इसका अर्थ क्या है और इसका लक्ष्य क्या है ?

योग का शाब्दिक अर्थ है मिलन। दार्शनिक दृष्टि से इसका अर्थ परमात्मा से मिलन होता है और जो परमात्मा से हमें जोड़ता है, वह योग है। पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही ब्रह्म है। लेकिन जब अज्ञानवश देखा जाता है, तो वह अनेक दिखलाई पड़ता है। अज्ञान के फलस्वरूप हम अपने को परमात्मा से अलग समझते हैं। इतना ही नहीं विविध वस्तुओं की आन्तरिक एकता को देखे बिना हम उन्हें भी भिन्न समझते हैं यहीं दुःख का उदय होता है। जहाँ कहीं भी दो या दो से अधिक हैं, वहीं भय, ईर्ष्या, घृणा, स्पर्धा और फलतः मानववेदना का कारण बनता है। जहाँ केवल एक है, वहाँ कौन किससे डरेगा और घृणा करेगा? इस विश्व में जो कुछ भी हम देखते हैं, वह केवल 'मैं' और एकमात्र 'मैं' है। 'मैं' विचार भी नहीं कर सकता क्योकि विचारक और विचार दोनों एक और अभिन्न हैं। जब यह स्थिति प्राप्त होती है, तब सारे मानव दुःख दूर हो जाते हैं।

सामान्यतः योग को एक तरीका कह सकते हैं जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति अपने अज्ञान को जो सारी विविधता का मूल है, दूर कर सकता है और इस तरह परमात्मा से एकता हासिल कर सकता है। यद्यपि परमार्थ दृष्टि में केवल एक का अस्तित्व है, तो भी पत्थर की तरह ही यह एक ठोस तथ्य है कि इस विश्व में बड़ी विविधता है। चाहे हम इस एक के बारे में कितनी भी दार्शनिक दृष्टि से क्यों न सोचें, हम वास्तविक जीवन में सम्बन्धों के टूटने पर, रोगग्रस्त होने पर या निराशा होने पर दुःखी होते हैं। कभी-कभी अपमानजनक शब्द, जिसका हवा की फूंक से अधिक कोई महत्व नहीं होता, हमारे मानसिक संतुलन को इस तरह बिगाड़ देता है कि हम कई दिनों तक दुःख का अनुभव करते हैं। कितना भी दर्शन इस दुःख को दूर नहीं कर सकता, जब तक कि वह उन व्यक्तियों के अनुभव पर आश्रित न हो, जिन्होंने चरम सत्य या परमात्मतत्त्व को पा लिया है। इसलिए, योग जीवन-स्थिति को, जैसा हम इसे

पाते हैं, स्वीकार करता है और हमें उन तरीकों को बतलाता है जिनके माध्यम से हम मानवीय सीमाओं से उबर सकते हैं।

वह तरीका जिसके माध्यम से हम अपनी सारी भावनाओं को परमतत्व की ओर मोड़कर आनन्द प्राप्ति कर सकते हैं, यानी भक्ति के द्वारा भगवान से सम्बद्ध हो सकते हैं, भक्तियोग कहलाता है।

विवेक का वह तरीका जिसके माध्यम से हम उससे ऐक्य स्थापित कर सकते हैं या उसकी अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञानयोग या बुद्धि–विज्ञान कहलाता है।

अनासक्ति की कला जिसके माध्यम से हम अपनी क्रियाओं पर शासन कर सकते हैं और हम कर्म से सम्बन्ध रखते हुए भी कर्म के जाल में नहीं फँस सकते, वह कर्मयोग या कर्म का विज्ञान कहलाता है।

अन्त में वह तरीका जिसके माध्यम से हम मन को नियंत्रित कर सकते हैं, जो सारे दुःखों की जड़ है, राजयोग कहलाता है।

इस तरह स्पष्ट हो जायेगा कि योग में कोई रहस्य नहीं है। यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि योग की कला और उसके विज्ञान केवल तरीके हैं जो वास्तव में सहज, स्पष्ट और सरल हैं। यद्यपि उनकी प्रायोगिक सफलता केवल कठिन परिश्रम, अथक प्रयास और सर्तकता द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है तथापि कुछ पाखंडी लोग योग का दुरुपयोग वांछनीय कार्यो के लिए कर सकते हैं। लेकिन जो सच्चे साधक हैं, जो चरम सत्य को प्राप्त करने वाली दासता से मुक्त प्राणी हैं, वे अलौकिक घटनाओं और शक्तियों से विमोहित न होकर अपने पथ में रुकने के बजाय सीधे लक्ष्य तक पहुँचेंगे।

भक्तियोग

भक्ति का अर्थ भगवान से अनन्य प्रेम होता है तथा भक्तियोग में प्रेम और भक्ति के द्वारा भगवान की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है।

ईसा ने कहा था– ''मांगो तुम्हें मिलेगा, खोजो तुम्हें प्राप्त होगा। हाँ, उन्होंने और उनके जैसे अन्य लोगों ने खोजा और इतनी तन्मयता से खोजा कि विश्व का महान रहस्य उनके सामने प्रकाशित हो गया। भारत के मध्ययुगीन महान संत कबीर ने इस आध्यात्मिक अनुगमन के सम्बन्ध में कहा था–

मोको कहाँ तू ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
खोजोगे तो अभी मिलूँगा, पल भर की तलाश में।।

श्रीरामकृष्ण कहते थे– ''जिस प्रकार एक कंजूस धन से, एक माँ अपने बेटे से और एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से प्रेम करता है, अगर कोई व्यक्ति इन तीनों के प्रेम से युक्त होकर भगवान की खोज करे, तो वह आसानी से उसका अनुभव कर सकता है। लेकिन कौन ऐसा करता है? व्यक्ति तो सांसारिक सम्बन्धों के लिए ही घड़े भर आँसू बहाता है, भगवान के लिए कौन रोता है?''

मोहम्मद कहते थे– ''अगर तुम भगवान की ओर बढ़ोगे, तो वह तुम्हारे पास दौड़कर आयेगा।''

वे लोग वास्तव में बहुत भाग्यशाली हैं जो भगवान के प्रति अपने बाल-सुलभ प्रेम के कारण या तो भगवान की ओर मुड़ते हैं या वे स्वयं भगवान द्वारा खोज लिए जाते हैं और भगवान की भुजाओं में ले लिए जाते हैं। लेकिन उनके बारे में क्या कहा जाए जो पूर्णरूपेण लगनशील होते हुए भी भगवान के प्रति स्वतः स्फूर्त प्रेम नहीं रखते। इतना ही नहीं, वे अनेक आकांशाओं से आक्रान्त रहते हैं– जैसे क्या ईश्वर सचमुच में है? क्या ईश्वर के पीछे उस समय चक्कर लगाना उचित है जबकि अनेक सांसारिक वस्तुऐं उन्हें सुख एवं मनोरंजन के साधन शीघ्र ही प्रदान करने के लिए तत्पर हैं? एक छोर पर भगवान के स्वाभाविक प्रेमी हैं, दूसरे छोर पर विशुद्ध भौतिकवादी। किन्तु इन दोनों के बीच में ऐसे अनेक लोग हैं जो प्रकाश और अंधकार के बीच आधी दूरी ही तय कर

पाते हैं। इनके पास बड़ी मात्रा में आध्यात्मिक चाह है, किन्तु फिर भी ये सांसारिक प्रलोभनों से ऊपर नहीं उठ पाते। अपने मन में द्वन्द रखने के कारण ये बड़े दुःखी रहते हैं। ऐसे लोग यदि प्रेमपथ या भक्तिपथ का अनुगमन करें तो उन्हें शान्ति और प्रकाश प्राप्त हो सकता है। अधिकांश आध्यात्मिक साधकों के लिए आध्यात्मिक जीवन का पथ लम्बा और कष्टप्रद होता है, उनकी मंजिल दूर और धुंधली होती है। लेकिन वे लोग जो अन्त तक लगनशील और सहनशील बने रहते हैं प्रायः सफलता प्राप्त करते हैं क्योंकि ईश्वर भक्तों का निर्णय आध्यात्मिक श्रमों से न करके, उनके संघर्ष की गहराई के आधार पर करते हैं।

सामान्य रूप से प्रार्थना भक्ति की पहली सीढ़ी है। प्रत्येक ध र्म कहता है कि भगवान के प्रति सच्ची भक्ति की संरचना के लिए प्रार्थना करना चाहिए। लेकिन एक शंकालू मन पूछेगा– 'मुझे क्यों प्रार्थना करना चाहिए? मैं कैसे भगवान की प्रार्थना कर सकता हूँ, जबकि न तो मैंने उसे देखा है और न ही जाना है? और भला इसका प्रमाण क्या है कि मेरी प्रार्थना कभी सुनी भी जायेगी और उसका जवाब भी मिलेगा?' यह निःसन्देह सत्य है कि बिना ईश्वर को जाने उसकी प्रार्थना करना कठिन है, लेकिन उतना ही यह भी सच है कि बिना प्रार्थना और उत्कट लालसा के कोई व्यक्ति भगवान को नहीं जान सकता। यह सर्वप्रथम तो विरोधाभास सा लगता है, लेकिन यह विवाद तुरन्त ही शान्त हो जाता है जब संदेहशील व्यक्ति महान संतों एवं द्रष्टाओं के प्रमाणों में विश्वास करने लग जाता है जो यह कहते हैं कि– ''हाँ, ईश्वर प्रार्थनाओं का उत्तर देते हैं, और कोई भी प्रेम और निस्वार्थ भाव से की गई प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती। हम निष्ठावान शोधार्थियों के अनभवों की उपेक्षा नहीं कर सकते जिन्होंने सत्य का अनभव किया है। अगर हम ऐसे व्यक्तियों की वाणियों में विश्वास करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं जो सुदूर अतीत में रहते थे, तो हमारे समकालीनों में भी ऐसे व्यक्ति

अवश्य प्राप्त हो सकते हैं जो प्रार्थना के महत्त्व के साक्षात् प्रमाण हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रतिदिन का जीवन शान्ति, प्रसन्नता और निःस्वार्थ प्रेम से इतना पूर्ण होता है कि किसी भी निष्ठावान व्यक्ति के लिए इन प्रमाणों में अविश्वास करना असम्भव हो जाता है। ऐसे शंकालू लोग भाग्यशाली हैं जो अपने प्रारम्भिक जीवन में इन व्यक्तियों से मिलते हैं और उन्हें पहचानते हैं।

प्रार्थना एवं पूजा के अलावा महान आत्माओं की संगति भी भक्ति के विकास में बड़ी महत्वपूर्ण होती है। यह कहा जाता है कि साधुओं की क्षणिक संगति भी एक ऐसी नाव का काम करती है जिसमें बैठकर संसार–सागर को आसानी से पार किया जा सकता है। धर्म के क्षेत्र में सच्चे गुरु की उतनी ही आवश्यकता पड़ती है जितनी कि जीवन में अन्य क्षेत्रों में पड़ती है। यद्यपि सैद्धांतिक रूप में एक व्यक्ति बिना गुरु के भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है, फिर भी प्रायः लोग अपने बच्चों को स्कूलों और कॉलेजों में भेजते हैं। ठीक इसी तरह बिना किसी बाहरी मदद के भगवान की अनभूति निःसन्देह संभव है, किन्तु ऐसी संभावना बहुत ही कम लोगों तक सीमित रहती है। अन्य सभी महात्माओं की मदद पर ही निर्भर करेंगे। वह भक्त सचमुच भाग्यशाली है जिसे ऐसा गुरु मिल गया है जिसे साक्षात्कार हो गया हो या परम पुरुष हो क्योंकि ऐसे गुरु केवल शिक्षा ही नहीं देते बल्कि अपने शिष्यों में शिक्षा के पालन हेतु शक्ति का संचार भी करते हैं। ऐसे आध्यात्मिक आचार्यों के शब्दों में दृढ़ विश्वास रहता है जो दूसरे साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता। शिष्य ऐसे गुरु से दीक्षित होकर कभी अंधेरे में भटकता नहीं है, बल्कि कठिन से कठिन पथ पर अग्रसर होता है। ऐसे सच्चे गुरु से मिलने के बाद भक्त की मार्ग और मंजिल सम्बन्धी शंकाए एवं हिचक दूर हो जायेंगी और उसका एकमात्र उद्देश्य साधना के पथ पर, चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो, पहुँचना होगा और मंजिल को प्राप्त करना होगा। यह साधारण बात नहीं है। दूसरे

साधक जहाँ सागर में बिना पतवार के हैं, वहाँ भाग्यशाली शिष्य के जहाज को पार लगाने के लिए तथा सुरक्षित ढंग से उस पार पहुँचाने के लिए अनुभवी कर्णधार प्राप्त है। वह साधक जो सच्चे गुरु की तलाश में है, अगर थोड़ी देर के लिए असफल होता है, तो उसे निराश नहीं होना चाहिए। अगर वह लगनशील है तो निश्चित रूप से उसे मदद मिलेगी, जैसा कि अतीत में कई घटनाओं में हुआ है। यह बात निश्चित है कि भक्त जिसके मन में प्रभु–प्राप्ति के लिए उत्कट लालसा है, वह अपने प्रयास में तमाम विघ्नों के बावजूद भी प्रगति करेगा।

अधिकांश धर्म आध्यात्मिक साधकों के लिए प्रार्थना की ही तरह ईश्वर सम्बन्धी पवित्र शब्दों की आवृत्ति को भी महत्व देते हैं। भगवान के नाम की आवृत्ति मन में ईश्वरीय गुणों की सुसंगति लाती है। इससे आध्यात्मिक प्रगति होती है। सच्चे साधुओं की संगति सर्वदा संभव नहीं होती, तो भी कोई व्यक्ति पवित्र शब्दों की आवृत्ति से होने वाले लाभ को कम से कम प्राप्त कर सकता है। मन को नियंत्रित करना बड़ा कठिन है, जितना ही कोई उसे नियंत्रित करने की चेष्टा करता है, उतना ही वह इधर–उधर भागता है। मन को नियंत्रित करने में जप ऐसा ही सहज यांत्रिक साधन होता है। जिन संतों ने इस तरीके को अपनाया है, उन्होंने पाया है कि इसके प्रयोग से मन अपने आप शान्त हो जाता है। इसलिए दादू जो भारत के महान संत थे कहते हैं–

"दादू बिन अवलम्बन क्यूं रहै, मन चंचल चली जाइ।
अस्थिर मनवां तौ रहे सुमिरण सेती लाई"।।

तुलसीदास ने भी जो मध्ययुगीन भारत के महान संत और राम भक्त थे, जप साधना पर विशेष जोर दिया था। उन्होंने कहा है–

"सगुन ध्यान रुचि सरच नहिं, निर्गुन मन ते दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को, नाम सजीवन मूरि।।"

अपने हाथों में बिना कोई दूसरी माला लिए हुए साँसों के साथ प्रभु का नाम लो। इस तरीके से तुम ब्रह्म का अनुभव करोगे।

पुस्तकों को पढ़ते समय कभी-कभार ऐसे अनुच्छेद आते हैं जिसे पहले पहल समझना कठिन होता है, किन्तु बार-बार पढ़ने पर इसका अर्थ दिमाग में स्पष्ट हो जाता है। ठीक इसी तरह पवित्र शब्दों की पुनरावृत्ति से इसका आन्तरिक महत्व भक्त के मन और हृदय में कछ समय बाद ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि उसे इस सम्बन्ध में कोई शंका ही नहीं रह जाती। किन्तु यह भी सत्य है कि आवृत्ति के बावजूद भी कठिन अनुच्छेदों का अर्थ तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक कि पाठक उसे पूरे ध्यान से नहीं पढ़ता। ठीक इसी तरह एक भक्त जो अन्यमनस्क भाव से या यंत्र की तरह भगवान के नाम को दुहराता है, वह उसी परिणाम को पाने की आशा नहीं कर सकता जिसको एक दूसरा भक्त उत्कट लगन और एकाग्रता के माध्यम से प्राप्त करने की आशा रखता है।

भक्ति योग की साधना में ये प्रार्थनाएँ, सुसंगति और जप केवल प्रारम्भिक सोपान हैं। मुख्य वस्तु भक्ति को प्राप्त करना है। एक बार जब भक्त इसे प्राप्त कर लेता है, तो वह सुरक्षित हो जाता है। उसकी सफलता निश्चित हो जाती है। अगर प्रयास और संघर्ष के माध्यम से कोई व्यक्ति नदी की मुख्य धारा तक पहुँच जाता है तो उसके बाद धारा ही शीघ्रता से उसे अपने साथ ले चलेगी। वह भक्त जिसने अपने मन में सच्ची भगवत् भक्ति का विकास कर लिया है, कभी भी गलत कदम नहीं उठायेगा। वह शुभ पथ पर ही बढ़ेगा क्योंकि स्वयं भगवान ही उसका हाथ अपने हाथ से पकड़े हुए हैं और जीवन में उसका पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए भक्ति शुभ प्रकाश बनती है और सामंजस्य की स्थापना करती है।

क्रमशः

(साभार- रामकृष्ण मिशन वेल्लूर मठ एवं अद्वैत आश्रम कोलकाता द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'योग क्या है' में स्वामी पवित्रानन्द के लेख से लिए गये कुछ अंश)

ईश्वर का नाम

एक गरीब ब्राह्मण था जिसकी पत्नी परिवार के लिए अधिक धन लाने हेतु उसे निरंतर तंग करती रहती थी। लेकिन वह भला आदमी आमदनी बढ़ाने का कोई भी उपाय नहीं ढूँढ पा रहा था। एक दिन एक प्रसिद्ध संत उनके गाँव में आये और निकट ही डेरा डाला, उनके पास लोग किसी न किसी हेतु दर्शन करने जा रहे हैं, यह देखकर उसकी पत्नी ने उसे उकसाते हुए कहा, ''संत के पास जाकर माँगते क्यों नहीं ताकि हमारी हालत सुधरे ? उनके पास कोई सिद्धियाँ होंगी तभी लोग उनके पास जा रहे हैं।

''अरे, मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ ?'' लज्जा से सर झुकाते हुए उसके पति ने कहा, ''साधु के पास तो ज्ञान, भक्ति की प्राप्ति के लिए जाना चाहिए।'' लेकिन उसकी पत्नी ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अन्त में एक दिन बाह्मण साधु बाबा के पास जाकर बैठ गया, लेकिन कुछ बोल नहीं सका।

अन्ततः संत ने पूछा– ''अच्छा भाई, तुम क्यों आये'' ब्राह्मण ने उत्तर दिया, प्रभु, ''मेरी पत्नी का विश्वास है कि आप चमत्कार कर सकते हैं। क्या आपके पास वह पारस पत्थर है जिसके छूने से सब वस्तुएँ सोने की हो जाती है ? मैं उसी के लिए आपके पास आया हूँ।'' यह कहकर उसने लज्जा से अपना सिर झुका लिया।

सन्त ने उत्तर दिया, ''ओहो! क्या इतनी सी बात है ? अरे मैंने आज ही ऐसा एक पत्थर उस नाले में फेंका है। खोजने से शायद तुम्हें मिल जाये।'' गरीब बाह्मण ने खोजा तो उसे विचित्र आकार का एक रंगीन पत्थर मिला और उसका अनुमान ठीक निकला कि वह पारस पत्थर ही था। पुनः सन्त के निकट बैठकर वह उस पत्थर को कुतूहलपूर्वक देखता रहा। फिर उसने सन्त की ओर देखा और आश्चर्यान्वित होकर पूछा, ''आपने उसे फेंक दिया था। इसका अर्थ है कि आपके पास इससे भी अधिक मूल्यवान कुछ है। कृपया मुझे वही देवें।'' सन्त ने उत्तर दिया, ''हाँ, सचमुच! और वह है भगवान का नाम। मैं तुम्हें वह दूँगा। लेकिन तुम्हारी पत्नी की अभी भी बहुत सी इच्छाएँ है। वह उसके (ईश्वरानुभूति) के लिए तैयार नहीं है। इसलिए यह पारस पत्थर उसे दे आओ।'' ब्राह्मण ने ऐसा ही किया और गृहत्याग कर परमपद की खोज में लग गया।

सभी जीवों में ईश्वर को देखें

स्वामी रामकृष्ण परमहंस निरछल हृदय के साधक संत थे। वह सभी संप्रदायों के अवतारों और देवी–देवताओं को एक ही भगवान का रूप मानते थे।

एक दिन वह कोलकाता के दक्षिणेश्वर काली मंदिर में बैठे हुए थे। किसी व्यक्ति ने दरिद्र से दिखने वाले एक युवक को पास आते देखकर झिड़क दिया। स्वामी रामकृष्ण ने खड़े होकर उस व्यक्ति को प्रणाम किया और झिड़कने वाले से बोले, अरे, किसी के प्रति अपशब्द कहना अधर्म है। यह भोला व्यक्ति गया की फल्गु नदी के समान है। ऊपर से तो फल्गु नदी के तट पर बालू ही दिखाई पड़ता है, पर नीचे पवित्र जल की धारा बहती रहती है। इस भोले निरछल और दरिद्र व्यक्ति के हृदय में मेरे इष्टदेव साक्षात विराजमान हैं।

एक व्यक्ति रामकृष्ण परमहंस के सत्संग के लिए आया। उसने पूछा, बाबा, मैं कई वर्षों से पूजा–उपासना करता आ रहा हूँ, लेकिन ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो पाई। क्या गृहस्थी छोड़ साधु बन जाऊँ? स्वामी जी ने कहा, कलियुग में लोगों के लिए भक्ति और प्रेम का पथ ही सुगम है। गृहस्थी में रहते हुए भी शुद्ध अंतःकरण के लिए भगवन्नाम का जप तो करना चाहिए, प्रतिदिन अपंग, बीमार और दरिद्र की सेवा भी करनी चाहिए। प्रत्येक प्राणी में भगवान के दर्शन करने का अभ्यास करो, तुम अनंत सुख की अनुभूति करने लगोगे। जिज्ञासु की समस्या का समाधान हो गया।

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301